**भाद्र कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक - १३-०९-१९६३**
**गाथा-११७ से ११९, ४९३-४९४, प्रवचन-२**

यह उपदेशशुद्धसार, तारणस्वामी रचित। इसमें मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। देखो, ४९३ (गाथा) थोड़ी बाकी थी।

**एकं जिनं सरूवं, सुयं षिपनं च कम्म बंधानं।**
**अन्त चतुस्टय सहियं, ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं॥४९३॥**

४९३ गाथा। उसे नहीं अभी बराबर व्यवस्थित। मोक्षमार्ग का स्वरूप। सिद्धों का एक ही प्रकार का जिनस्वभाव है। वह सिद्ध समान मेरा ही स्वरूप एक प्रकार से शुद्ध अरागी-वीतरागी स्वरूप है। वही मेरा स्वभाव राग-द्वेष को जीतनेवाला है, ऐसा अन्तर साधन करना चाहिए। ऐसा उपदेश है न? उपदेशशुद्धसार। उपदेश में यह बात मुख्य आनी चाहिए। मेरा स्वरूप सिद्ध समान सर्वज्ञ है। वह सर्वज्ञ है न। अपने कहाँ आया सर्वज्ञ का? ज्ञानसमुच्चय? आया, देखो! क्या कहते हैं? कि सिद्ध समान मेरा स्वरूप है, ऐसी निश्चय की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान, रमणता करना, इसका नाम निश्चय सत्य मोक्षमार्ग है। ऐसा उपदेश करना, उसका नाम उपेदशशुद्धसार है। सेठ! समझ में आया? ऐसा उपदेश करना। अब इसमें आया देखो। ज्ञानसमुच्चय (सार) दूसरा ग्रन्थ है न? देखो, ११४ गाथा चली है। उसमें क्या कहते हैं?

**समयं सर्वन्य सुद्धं, न सार्धं भव्यलोकयं।**
**अन्यान व्रत क्रिया जेन, समय मिथ्या समाचरेत्॥११४॥**

समय शब्द से आत्मा। **सर्वज्ञ स्वरूप है...** देखो, यह सिद्ध समान यहाँ कहा न? मेरा आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ—ज्ञ-स्वरूप, ज्ञ-स्वरूप / सर्वज्ञस्वरूप मैं हूँ। सर्वज्ञ की दशा देव की तो पूर्ण पर्याय में प्रगट हुई है, परन्तु मैं सर्वज्ञस्वभाव हूँ। मेरा स्वभाव भी सर्वज्ञ है। तीन काल—तीन लोक को अपने स्वभाव से जाने, ऐसा मैं आत्मा हूँ। ऐसा पहले निर्णय करना, इसका नाम ज्ञान का सार है। यह ज्ञानसमुच्चयसार है न। समझ में आया? एक-एक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। डेरैयाजी! निगोद का आत्मा एक शरीर में अनन्त, वह भी सर्वज्ञस्वभावी ही है। सर्वज्ञ का अर्थ? कि अकेला

ज्ञानपुंज। ज्ञान किसे न जाने? ज्ञान स्व-पर पूर्ण तीन काल—तीन लोक को अनन्त पदार्थसहित अनन्त पर्याय स्वरूप को जाने, ऐसा मेरा स्वरूप है, ऐसा पहले उसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया?

और '**सुद्धं' राग-द्वेषादि व कर्मादि रहित शुद्ध है...** यह नास्ति से बात की। अस्ति से यह कहा। अस्ति से क्या कहा? कि '**समयं सर्वन्य सुद्धं**' समय शब्द से आत्मा और सर्वज्ञ। और शुद्ध, यह नास्ति से। राग-द्वेष, पुण्य-पाप विकल्प से रहित ऐसा मेरा आत्मा है, ऐसा अन्तर में निर्णय, निश्चय, ज्ञान, रमणता करना, इसका नाम निश्चय सत्य मोक्षमार्ग कहा जाता है। कहो, समझ में आया? व्यवहार बीच में आता है। यह कहेंगे। प्रथमानुयोग, चार अनुयोग का अभ्यास करना, वह सब आता है, परन्तु उसमें अन्तर का स्वभाव ज्ञान से ज्ञान बढ़ता है। ऐसा अन्तर में निश्चय करके शुद्ध अर्थात् राग-द्वेषादि भावकर्म और कर्म आदि जड़ कर्म से मैं रहित हूँ।

**'न सार्धं भव्यलोकयं' भव्यजीव इसी का साधन करते हैं...** अभव्य इसका साधन नहीं कर सकते। तो भव्य-अभव्य दो जीव भी सिद्ध किये। डेरैयाजी! दो प्रकार के जीव सिद्ध किये। तारणस्वामी कहते हैं, भव-अभव्य दो प्रकार के जीव हैं। भव्य भी अनन्त जीव हैं और अभव्य भी अनन्त हैं। सिद्ध किया या नहीं? भव्य शब्द कहने से अभव्य सिद्ध हो गया। अस्ति कहने से नास्ति दूसरी वस्तु सिद्ध हो जाती है। '**न सार्धं भव्यलोकयं**' जो कोई अपना स्वरूप प्राप्त करनेयोग्य है, वही अपना स्वरूप साधता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञानपुंज है यह। यह देखो। ६२ पृष्ठ पर अर्थ है।

**भव्यजीव इसी का साधन करते हैं...** और '**अन्यान व्रत क्रिया जेन**' ऐसा स्वभाव सर्वज्ञ प्रभु मैं ही सर्वज्ञ हूँ। मेरे ज्ञानसाधन से ही मैं सर्वज्ञ पर्याय में हो सकता हूँ। ऐसा निश्चय अनुभव किया, उससे विरुद्ध **जिसने आत्मज्ञान रहित...** ऐसा सर्वज्ञस्वभाव मेरा नहीं, मेरा सर्वज्ञस्वभाव नहीं, मैं तो रागवाला, अल्प ज्ञान और निमित्त के सम्बन्ध में जुड़नेवाला हूँ, ऐसा जिसका ज्ञान है, वह आत्मज्ञानरहित है। '**अन्यान व्रत क्रिया जेन**' यह सर्वज्ञ के सामने डाला अज्ञान। भाई! पण्डितजी! सर्वज्ञ के सामने अज्ञान डाला।

जिसका अपना स्वभाव एक समय में सर्वज्ञ शक्तिरूप से है, उससे पहले देखो। ११२ गाथा है न इसमें?

**ध्रुव समयं च जानाति, अनेयं राग बन्धनं।**
**दुर्बुद्धि विषया होंति, समय मिथ्या स उच्यते॥११२॥**

**जिसमें निश्चय शुद्ध आत्मा का ज्ञान न हो...** ध्रुव '**ध्रुव समयं**' समय शब्द से आत्मा। ध्रुव शुद्ध चिदानन्द सर्वज्ञस्वभावी एक समय में '**ध्रुव समयं च जानाति**' ऐसा **आत्मा का ज्ञान न हो...** और **अनेक राग भावों में बाँधनेवाली बातें हों...** शुभाशुभराग की अनेक बन्धन की बात है और '**दुर्बुद्धि विषया होंति' जिसमें मिथ्या बुद्धि से लिखे गये...** अज्ञानी ने कहे हुए। अज्ञानी ने राग-द्वेष से लाभ होता है, ऐसे आगम बनाये हैं, ऐसा आगम रचा। **गये विषय हों... 'समय मिथ्या स उच्यते' उसको मिथ्या आगम कहते हैं।** समझ में आया? जिसमें ध्रुव एक समय में सर्वज्ञस्वभावी एक-एक आत्मा हूँ, ऐसा जिसमें कथन नहीं। लखाण न? कथन। और उससे विरुद्ध जिसमें कथन है कि आत्मा अल्पज्ञ है। भाई! भगवान का तो दास ही है। कभी पूर्ण हो सकता नहीं। भगवान का सेवक ही सदा रहेगा। ऐसी जिसमें कथनशैली है, वे सब मिथ्या आगम हैं। समझ में आया? '**समय मिथ्या स उच्यते' उसको मिथ्या आगम कहते हैं।**

पश्चात् ११३।

**समयं च सुध सार्धं च, असमय भावनं कृतं।**
**समय मिथ्या जिनं उक्तं, संसारे दुष बीर्जयं॥११३॥**

**'समयं' आगम वही यथार्थ है जो शुद्ध आत्मा की प्राप्ति का साधन बतावें,...** साधन बतावे, यह तुम्हारी हिन्दी भाषा में है? बतावे हैं? यहाँ लिखा है इसमें। पाठ है या नहीं? '**समयं च सुध सार्धं**' जो आगम—शास्त्र अपने शुद्ध भगवान आत्मा की प्राप्ति का अन्तर निश्चय उपाय बतावे, वही आगम है। और जो '**असमय भावनं कृतं' शुद्धात्मा से विपरीत अशुद्ध आत्मा की...** अर्थात् राग की, अल्पज्ञता की, निमित्त मिलाने की—प्राप्ति की भावना जिसमें लिखी हो, **अशुद्ध आत्मा की व अनात्मा की भावना करावे वह... 'मिथ्या समय जिनं उक्तं'** वीतराग तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने उस

आगम को मिथ्या आगम कहा है। पहिचान करनी पड़ेगी या नहीं मिथ्या आगम क्या? सम्यक् आगम क्या? ऐसे के ऐसे बिना भान के चलना?

**मुमुक्षु :** करनी पड़ेगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करनी पड़ेगी? समझ में आया?

**ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है...** देखो, **'जिनं उक्तं'** तारणस्वामी कहते हैं, भाई! मैं अकेला नहीं कहता, त्रिलोकनाथ वीतरागदेव कहते हैं। उसके अनुसार मैं तो कहता हूँ, मैं मेरे घर की बात नहीं कहता। **'जिनं उक्तं'** परमेश्वर जैन वीतराग देवाधिदेव, ऐसे आगम को दु आगम, कु आगम कहते हैं। जिसमें राग से, पुण्य से, निमित्त से, संयोग से लाभ मनावे, ऐसा आगम भगवान का आगम नहीं है। वह तो कु आगम और दु आगम है। तो कु आगम और सम्यक् आगम की परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं?

**'संसारे दुष बीर्जयं' वह संसार में दुःखों के उत्पन्न करने का बीज कारण है।** कु आगम का ज्ञान, कुशास्त्र का ज्ञान, वह संसार में परिभ्रमण, निगोद का बीज है। समझ में आया? तो यहाँ कहा, **'अन्यान व्रत क्रिया जेन, समय मिथ्या समाचरेत्।' जिसने आत्मज्ञान रहित व्रत पाले,...** अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी आतमा माने बिना, सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का ज्ञान हुए बिना अज्ञानी प्राणी **व्रत पाले, चारित्र पाला...** चारित्र शब्द से यह क्रिया। पाठ में है न! मूल चारित्र शब्द नहीं। पाठ में तो व्रत और क्रिया दो (लिखे हैं)। व्रत और क्रिया। वह रागादि की क्रिया करता है, बन्ध की। समझ में आया? **पाला है उसने... 'समय मिथ्या समाचरेत्' मिथ्या आत्मा का ही सेवन किया था।** मिथ्या आगम को ही जाना। उसने तो मिथ्या आगम को सेवन किया, आत्मा का सेवन किया नहीं। कहो, समझ में आया? देखो, अर्थ में भी जरा ठीक लिखा है।

**यह आत्मा निश्चय से परमात्मा के समान सर्वज्ञ है तथा वीतराग है व आनन्दमयी है।** ऐसा अपना स्वभाव नहीं जाना, नहीं पहिचाना, नहीं पहिचाना, नहीं दृष्टि की और न अनुभव किया और उससे विरुद्ध अज्ञानभाव से धर्म मान रखा है राग से और पुण्य से और निमित्त से और क्रियाकाण्ड से धर्म होगा—ऐसा जिस शास्त्र में लिखा हो, वह कुआगम है। महेन्द्रभाई! कु आगम है देखो। खबर नहीं अभी तो क्या कुआगम को

माननेवाले। यह सब आता है। २५ अनायत दोष है। छह अनायतन कहीं है। छह अनायतन है। उसमें आता है। कुदेव, कुदेव को माननेवाला; कुगुरु, कुगुरु को माननेवाला; कुशास्त्र, कुशास्त्र को माननेवालो। कहीं है सही। अब सब कहीं याद रहता है? किसी जगह लिखा है। छह अनायतन। ज्ञानसमुच्चयसार। पृष्ठ १८९। लो! आवे तब आवे न। पृष्ठ १८९। ज्ञानसमुच्चयसार है। देखो, गाथा १८९, हों! पृष्ठ १०७। देखो! यह अधिकार है ज्ञानसमुच्चय—सच्चा ज्ञान करनेवाला क्या करता है?

**अनायतन षट्कस्चैव, कुदेवं कुदेव धारिनं।**
**कुसास्त्रं कुसास्त्रधारी च, कलिंगी कुलिंग धारिनं॥१८९॥**

ज्ञानसमुच्चयसार दूसरी पुस्तक है। **छह अनायतन भी हैं...** अनायतन। आयतन नहीं, धर्म का स्थान नहीं। अनायतन—कुधर्म का स्थान है। क्या? **कुदेव और उनके माननेवाले...** अब कुदेव किसे कहना? सुदेव से विपरीत है, ऐसी पहिचान करनी पड़ेगी या नहीं? यह तो वह भी सच्चा और यह भी सच्चा। अभी तो बहुत चला है। कहो, शोभालालजी! '**कुदेवं कुदेव धारिनं**' देखो! कुशास्त्र और उसे माननेवाले। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो चार अनुयोग कहे। चार अनुयोग। उन अनुयोग की व्याख्या श्रावक अधिकार में—श्रावकाचार में है। चारों ही प्रकार के अनुयोग का अभ्यास करना चाहिए। प्रथमानुयोग जिसमें धर्मकथा की बात चलती है, उसका भी अभ्यास करना। प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, जिसमें देव और गुरु। श्रावक और मुनि के आचरण की बात हो। करणानुयोग, जिसमें सूक्ष्म परिणाम का अधिकार हो और द्रव्यानुयोग जिसमें छह द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व, पंचास्तिकाय ऐसे अधिकार (कहे हों), इन चारों अनुयोगों का श्रावक को अभ्यास करना चाहिए। समझ में आया? इनसे विरुद्ध है उनके माननेवाले।

और '**कुलिंगी**' कुगुरु। कुलिंगी अर्थात् गुरु नाम धराते हैं, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा से विपरीत है। अन्तर वस्तु क्या है, परमानन्द सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा मैं अकेला ही हूँ और मैं मेरे ज्ञान से स्वरूप का साधन करके सर्वज्ञ (पद) प्राप्त कर सकता हूँ। दूसरे किसी का आधार है नहीं। ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं और उससे विरुद्ध है, वे

सब साधुपने का कुलिंग धारण करते हैं। द्रव्यलिंग नग्नपना हो, तो भी उसे कुलिंग कहा जाता है। शोभालालजी! कुलिंगी और कुलिंग को धारण करनेवाले। धारण करनेवाले का क्या अर्थ है? उसे माननेवाले। समझ में आया? **इनकी संगति न करनी चाहिए।** देखो! '**कुलिंगी कुलिंग धारिनं**' समझ में आया?

**कुदेवं जिनं उक्तं, राग द्वेष असुध भावना।**
**मिथ्या माया संजुक्तं, कुन्यानं कुदेव जानेहि॥१९०॥**

जिनेन्द्र '**जिनं उक्तं**' **जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है कि कुदेव ये हैं, जिनमें राग-द्वेष तथा अशुद्ध संसार लीन भाव है...** विकार आदि **वे मिथ्यात्व व माया सहित हैं या ऐश्वर्य में मगन हैं...** क्या कहते हैं? '**मिथ्या माया संजुक्तं**' **मिथ्या ऐश्वर्य...** बाहर की विभूति, चमत्कार, चमक आदि में मग्न है। **मिथ्याज्ञान के धारी हैं, उनको कुदेव जाना चाहिए।** समझ में आया? तो यह अनायतन है, ऐसा जानकर छोड़ना चाहिए, ऐसा उपदेश में चलता है। समझ में आया?

यहाँ तो सर्वज्ञ स्वभावी चलता था न! यह कहते हैं, देखो, सिद्धों का स्वभाव है, ऐसा मेरा स्वभाव है। यह मोक्षमार्ग। और '**सुयं षिपनं च कम्म बंधानं**' शब्द है? '**सुयं**' अर्थात् स्वयं। स्वयं कर्म बन्धनों को मैंने काट डाला है। काट डालता हूँ, यह मोक्षमार्ग है। नाश किया, वह पूर्ण सिद्ध है। समझ में आया? परन्तु किसे? स्वयं बन्धनों को। क्रियाकाण्ड राग और निमित्त से नहीं। सर्वज्ञस्वभावी मैं आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य अनन्तगुण के पिण्डरूप मैं प्रभु आत्मा हूँ। उसके अन्तर साधन से शुद्ध उपयोग द्वारा सर्व कर्मबन्धन को काट डालता हूँ। उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। और वह '**अन्त चतुस्टय सहियं**' भगवान अनन्त ज्ञानसहित पर्याय में है। मैं भी अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, (वीर्य आदि) चतुष्टयसहित त्रिकाल ध्रुव हूँ।

'**ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं**' उन्होंने अपने शुद्ध उपयोग स्वभाव द्वारा सिद्धि प्राप्त की है। तो ऐसा करके मैं भी पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव से सहित, पंच महाव्रत का शुभराग बीच में मुनि को भी आता है, श्रावक को बारह व्रत का विकल्प आता है, आता है, परन्तु वह तो जानने की चीज़ रह गयी, साधने की चीज़ नहीं। समझ में

आया? साधना तो मेरा स्वरूप अन्तर में है शुद्ध उपयोग से स्वभाव की सिद्धि प्राप्त करता हूँ।

अब देखो, ४९४। जरा वीर्य की गति बताते हैं।

**वीर्जं च सिद्ध सिद्धं, तारन तरनं च अन्मोय सहकारं।**
**हितमित परिनइ जुत्तं, कोमल परिनाम न्याय सहकारं॥४९४॥**

क्या कहते हैं? मेरा वीर्य अथवा सिद्ध भगवान का वीर्य। सिद्ध भगवान ने अपने वीर्य से सिद्धि प्राप्त की है। '**सिद्ध सिद्धं**' अपने आत्मबल—स्वरूप के वीर्य की स्फुरणा से सिद्धि प्राप्त की है। पुण्य-पाप का वीर्य में स्फुरण, वह वास्तव में वीर्य नहीं। अपना बल शुद्ध उपयोग में रमाना, उसका नाम वीर्य कहा जाता है। ओहोहो! है? '**वीर्जं च सिद्ध सिद्धं**' अपने वीर्य से सिद्धि पायी हैं। किसी की मदद से या शुभाशुभ परिणाम के वीर्य से या शरीर का बल है... क्या कहते हैं? वज्रकाय कहते हैं न? वज्र शरीर। वज्रनाराचसंहनन, कहते हैं, नहीं। इनकार करते हैं। वज्रनाराचसंहनन की सहायता से मैं केवलज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है। उसकी दृष्टि झूठी है। तो कहते हैं कि अपने वीर्य से सिद्धि प्राप्त की है। अपने वीर्य से प्राप्त कर सकता हूँ। पर की सहायता शरीर वज्रनाराच आदि की है नहीं। तो वज्रकाय है, शरीर है, हो; नहीं है—ऐसा नहीं, वह ज्ञान करने की चीज़ है कि एक दूसरी चीज़ है। ऐसा व्यवहार विकल्प भी आता है। है, परन्तु मेरे वीर्य की सिद्धि अपने अन्तर स्वरूप में निर्विकल्प शुद्धोपयोग से साधन होता है।

'**तारन तरनं च अन्मोय सहकारं**' क्या कहते हैं? मेरा आत्मवीर्य तारण तरण। स्वयं ही अपने को तारनेवाला। अपना निजस्वरूप शुद्ध आनन्द जो ज्ञान की रचना करे। क्या कहते हैं? अपना अन्तर वीर्य जो ज्ञान सम्यक् की रचना करे, आनन्द की रचना करे, अपने अनन्तगुण के निर्मल पर्याय की रचना करे, वह अपना तारण तरण अपना वीर्य है। दूसरे से मैं तिर सकता हूँ और दूसरे मुझे तारते हैं, ऐसा वीर्य मुझमें है नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** देखो! उपदेशक को ऐसा उपदेश करना चाहिए, ऐसा कहते

हैं। यह तो पर से होता है और ऐसे से होता है और इससे होता है। परवस्तु है अवश्य, देव-गुरु-शास्त्र चीज़ है अवश्य। नहीं है—ऐसा नहीं है। वाणी भी है अवश्य, परन्तु वह परद्रव्य है। उसकी सहायता से वीर्य की स्फुरणा होती है, वह उपदेश सच्चा नहीं है। समझ में आया? देखो!

**पुरुषार्थ (वीर्य) ही तारण तरण बनानेवाला है...** अपना ही वीर्य अपने को तारता है और दूसरे को भी उपदेश में आता है तो ऐसा ही आता है कि तेरा वीर्य स्वरूप की रचना तेरे आत्मबल से होती है। शुभाशुभ परिणाम से तेरे स्वरूप की रचना नहीं होती। और संहनन या शरीर के सामर्थ्य से (स्वरूप रचना नहीं होती)। यह कहते थे न, जंगल में रहते हैं, शरीर ऐसा है, सहन कर सकते हैं। नहीं, ऐसा इनकार करते हैं। शरीर मजबूत है, इसलिए ऐसे खड़ा रह सकता है, ऐसा वीर्य है... कहते हैं, नहीं। ऐसा नहीं है। झूठ बात है। ऐसा निमित्त हो। परन्तु वीर्य तो अपनी अन्तर में निमित्त के अवलम्बन बिना शुद्ध उपयोग के सामर्थ्य से साध सकता है। स्वयं ही अपने को तारनेवाला है। कहो, सेठी!

तथा। '**अन्मोय**' शब्द पड़ा है न? भाई! '**अन्मोय**' का अर्थ आनन्द करते हैं। मोद-मोद आता है न, इसलिए इसका अर्थ आनन्द करते हैं। '**अन्मोय**' शब्द पड़ा है न? अनुमोद। मोद अर्थात् आनन्द होता है। इसलिए अनु का फिर इन्होंने परम आनन्द किया। वरना ऐसे तो '**अन्मोय**' हो जाता है। अनुमोदन। परन्तु वह मोद है न मोद शब्द (इसलिए) आनन्द। अनुमोदन। और वह वीर्य निजानन्द का सहकारी है। अपना पूर्ण अनन्त आनन्द प्रगट करने में अपना वीर्य ही सहकारी अर्थात् निमित्त साधन है। समझ में आया? '**अन्मोय**' शब्द पड़ा है न इसमें। मोद का अर्थ यह भाषा में लिया है। मोद-प्रमोद-प्रमोद। प्रमोद अर्थात् आनन्द... आनन्द... आनन्द... अपने अतीन्द्रिय आनन्द में अपना वीर्य ही सहकारी है। सहकारी क्यों लिया? देखो, समझ में आया?

आनन्दगुण अपनी पर्याय से अपना साधन करता है। परन्तु वीर्यगुण साथ में सहकारी है। एक गुण दूसरे गुण को निमित्त है, परन्तु एक गुण दूसरे गुण को यथार्थ में सहायक नहीं, ऐसा कहते हैं। सहकार शब्द पड़ा है न? क्या? आत्मा में अनन्त गुण है।

सर्व गुण असहायी। एक गुण दूसरे गुण को सहायता नहीं करता, ऐसा स्वतन्त्र स्वभाव है। आहाहा! देरियाजी! वाँचे नहीं, विचारे नहीं, ऐसा का ऐसा बिना भान के चलता जाये। देखो, उसमें लिखा है। कि निजानन्द का सहकारी वीर्य है। ऐसा लिखा है। पाठ में है या नहीं? '**अन्मोय सहकारं तारन तरनं**' वीर्य—अपना पुरुषार्थ, आत्मबल एक वीर्य नाम का गुण है, वह अपने वीर्य की पर्याय की रचना करता है, साथ में अनन्तगुण की रचना करने में निमित्त—सहकारी होता है। अपना गुण अपनी पर्याय से परिणमन स्वयंसिद्ध, दूसरे गुण के उपादान के सहकार बिना (करता है)। निमित्त हो, निमित्त हो। समझ में आया? दूसरा राग नहीं, निमित्त नहीं, परन्तु अपने अतीन्द्रिय आनन्द में साधकपना परिणमन करता है तो, कहते हैं कि उसमें वीर्यगुण सहकारी साथ में है। निमित्तरूप से साथ में है। बाकी प्रत्येक गुण अपनी-अपनी अनन्त गुण की पर्याय में परिणमनेवाला स्वतन्त्र है। महेन्द्रकुमारजी! बड़ी बात बहुत सूक्ष्म है। जैन तत्त्व को समझना, यह कोई साधारण बात नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात है।

एक द्रव्य में अनन्त गुण, अनन्त गुण की एक-एक पर्याय स्वतन्त्र। दूसरे गुण की पर्याय सहकार-निमित्तरूप से साथ में है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? तो दूसरा निमित्त तो सहकारी कहीं रह गया। शरीर का सहकार और मनुष्य का सहकार... कहते हैं न लोग, भाई सबका सहकार होना चाहिए। दो हाथ से ताली बजती है। कहते हैं तुम्हारे? एक हाथ से ताली बजती है? सबका सहकार होना चाहिए। यहाँ इनकार करते हैं। दूसरे का तो सहकार नहीं, मात्र अपने आनन्दगुण की और केवलज्ञान गुण की पर्याय परिणमती है, उसमें वीर्यगुण का सहकार है। अपने वीर्यगुण का सहकार है। तो इस अपेक्षा से कहा गया है कि स्वरूप की सर्व गुण की रचना वीर्य ने की। क्योंकि एक-एक गुण में भी ऐसी शक्ति है। वीर्य की एक-एक गुण में शक्ति ऐसी है। ज्ञानगुण अपनी शक्ति से परिणम रहा है, दर्शन अपनी शक्ति से परिणम रहा है, आनन्द अपनी शक्ति से परिणम रहा है, स्वच्छता अपनी शक्ति से परिणम रही है। समझ में आया? ऐसे उपदेश को उपदेश शुद्ध कहा जाता है। दूसरे उपदेश को अशुद्ध और मिथ्या आगम का उपदेश कहा जाता है। धर्मचन्दजी! समझ में आया?

क्या कहा, देखो, '**हितमित परिनइ जुत्तं, कोमल परिनाम न्याय सहकारं।**' यहाँ भाषा ली है। '**हितमित**' यह वीर्य हितकारी है। अपना आत्मबल वीर्यबल स्वभाव सामर्थ्य ही हितकारी है। शरीर का सामर्थ्य या दूसरा सामर्थ्य हितकारी नहीं। अनन्त है। अपने वीर्य की शक्ति में अनन्त अपरिमित बेहदता पड़ी है। एक समय का वीर्य अनन्तगुण में मददरूप निमित्त, इतनी सामर्थ्य और एक समय का वीर्य स्वरूप को धारण करता है और डिगता नहीं, ऐसी एक समय के वीर्य की सामर्थ्य है। अनन्त है। अपने परिणमन में लीन है। '**परिनइ जुत्तं**' कहा है न? तो वीर्य अपनी पर्याय में लीन है। समझ में आया? पर्याय-पर्याय। वीर्य की पर्याय होकर अपनी पर्याय में लीन है। ऐसा वीर्यगुण का कार्य है।

**मुमुक्षु :** स्वतन्त्र परिणमन बताया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वतन्त्र परिणमन है।

'**कोमल परिनाम न्याय सहकारं**' कोमल अर्थात् सरल अर्थात् कोमल अर्थात् सीधा है। वीर्य सीधा सरल है और कोमल स्वभाव अनन्त ज्ञान का सहकारी, वह और यहाँ लिया, देखो! अभी केवलज्ञान जो प्राप्त होता है, उसमें भी वीर्य सहकारी—साथ में है। अपने केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, वह स्वरूप के साधन में। देखो, मोक्षमार्ग लिया है इसमें। तो यह केवलज्ञान की प्राप्ति का साधन स्वयं करता है, उसमें वीर्य भी सहकारी साधन है। आनन्द में सहकारी, केवलज्ञान में सहकारी, केवलदर्शन में सहकारी अपना वीर्य है। शरीर पुष्ट हो तो बहुत काम कर सके, अपवास कर सकता है। धूल है, अपवास करे उसमें क्या आया? धर्म कहाँ आया उसमें? वह तो शरीर की—जड़ की क्रिया हुई। जड़ की क्रिया का अर्थ राग मन्द है अपवास में, वह पुण्य है। परन्तु आहार नहीं आया, नहीं गया, वह तो जड़ की क्रिया है, वह आत्मा की क्रिया नहीं। कहो, समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**कोमल परिनाम न्याय सहकारं**' आत्मा में वीर्यगुण है। '**इसी वीर्य से आत्मा अनेक भवसागर से तार लेता है।** अपने को अनन्त संसार से तार लेता है। '**इसलिए वही वीर्य तारण तरण है। ...तारण-तरण है। इस वीर्य की सहायता से**

**आनन्द सदा बना रहता है और ज्ञान सदा जाना करता है। यह वीर्य अनन्त है। कभी अपने स्वभाव के परिणमन से थकता नहीं।** यहाँ यह लिया मूल तो, भाई! वह आता है न वीर्य थकता नहीं। ऐसा कि अनन्त गुण प्रगट हुए तो अब वीर्य थक गया। पूर्ण वीर्य हो गया। समय-समय में नयी-नयी वीर्य की पर्याय अपने सामर्थ्य से परिणमन होती है। ऐसा साधन अन्तर में मानना, अनुभव करना, उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। अब यह चार अनुयोग में है न? श्रावक में है न? श्रावकाचार में है? कहाँ है? नहीं चार अनुयोग? वह दृष्टि ली थी न? द्रव्य। हाँ, श्रावकाचार।

.... प्रथमानुयोग का अभ्यास करना। जिसमें कथा का योग आता है। भगवान ने कहा है, नया नहीं। नाम बदलता है, परन्तु कथानुयोग में अनन्त तीर्थंकरों ने... उसमें आयेगा, देखो! '**प्रथमानुयोग करनानं, चरनं**' पश्चात् करणानुयोग, पश्चात् चरणानुयोग और '**द्रव्यानि विदंते**' द्रव्यानुयोग। यह चार हैं। श्रावकाचार दूसरा है? नहीं? '**न्यानं तिअर्थं संपूर्नं, सार्धं पूजा सदा बुधै**' चार अनुयोग, **ऐसे चार प्रकार शास्त्र जानना जिनमें अपने रत्नत्रयरूपी...** उसमें जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो कथन है, वह ज्ञान है। उसकी '**पूजा सदा बुधै सार्धं**' पूजा सदा पण्डितों को करना चाहिए। कहो, इसमें चार का अधिकार। देखो,

**प्रथमानुयोग पद वेदंते, विंजनं पद सब्दयं।**
**तिअर्थं पद सुद्धस्य, न्यानं आत्मा तुव गुनं॥३४८॥**

प्रथमानुयोग में भगवान की वाणी में बहुत आया है। गणधर का कथन, तीर्थंकर का कथन, बलदेव का कथन, वासुदेव का कथन, धर्मकथा का कथन। तो कहते हैं कि प्रथमानुयोग से शास्त्र का अनुभव करना चाहिए। '**वेदंते**' जानना चाहिए, जानना। आती तो बहुत बात है। जिसे प्रथमानुयोग की कथा की अरुचि है, उसे अध्यात्म की अरुचि है। आता है न? कहाँ? मोक्षमार्गप्रकाशक में। हमारे पण्डित तैयार हैं न! समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। जिसे चार अनुयोग में किसी भी अनुयोग समझने की अरुचि है, उसे अध्यात्म की सच्ची रुचि है ही नहीं। समझ में आया? देखो, यहाँ लिखा है न? '**प्रथमानुयोग पद वेदंते, विंजनं पद सब्दयं।**' व्यंजन, अक्षर, शब्द, वाक्य,

अर्थ यह तो निमित्त से क्या-क्या अलंकार करते हैं शास्त्र में! भावार्थ। उसे प्रगट पदार्थ को शुद्ध जानना चाहिए। बराबर शुद्ध पद क्या कहते हैं, वह जानना चाहिए। **'न्यानं आत्मा तुव गुनं'** यथार्थ ज्ञान, वह आत्मा का गुण है। अभी तो फिर लेंगे। शाश्वत् पड़ा है। **'विंजनं च पदार्थं च, सारस्वतं'** प्रथमानुयोग शाश्वत है, ऐसा कहते हैं, भाई! नाम बदले शब्द।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यक्ति भिन्न-भिन्न होते हैं, प्रत्येक तीर्थंकर, प्रत्येक गणधर भिन्न-भिन्न हों। परन्तु **'विंजनं च पदार्थं च, सारस्वतं नाम सार्धयं'** ३४९ गाथा है। क्या कहते हैं, देखो! अक्षर, शब्द, पदार्थ और नाम। जो कथा चलती है वह। उसके सब अर्थ सदा से ही चले आते हैं। अनादि का प्रथमानुयोग है। उसमें कोई नयी बात नहीं। चारों अनुयोग भगवान के मुख से निकले हुए हैं। जहाँ.... कथनशैली हो, वहाँ आगे मूल बात हो, वहाँ वह बात गौण हो जाती है। परन्तु चारों ही बात तो शास्त्र में है। शास्त्र का अभ्यास चारों अनुयोगों का यथार्थ ज्ञान के लक्ष्य से, हों! आत्मा के लक्ष्य से। परलक्ष्य से करे, ऐसा नहीं। तो ऐसा चला आता है। उस भाव का अनुभव करना चाहिए। निश्चल ज्ञानमय आत्मा के साथ-साथ जानना चाहिए। उसके साथ आत्मा का ज्ञान भी साथ में करना चाहिए। देखो, है या नहीं? अकेला नहीं। **'धुवंन्यान मयं सार्धं'** प्रथमानुयोग का ज्ञान करना चाहिए। साथ में उसमें शुद्ध आत्मा का निपटारा करना चाहिए कि इसमें शुद्धात्मा क्या इन्होंने कहा, वह निकास चाहिए। समझ में आया?

पश्चात् देखो,

**करनानुयोग संपूर्नं, स्वात्म चिंता सदा बुधै।**
**स्व स्वरूपं च आराध्यं, करनानुयोग सारस्वतं॥३५०॥**

करणानुयोग पूर्ण वाँचना चाहिए। निवृत्ति कहाँ है? नवराश को क्या कहते हैं? फुरसत। श्रावक को श्रावकाचार में तारणस्वामी आदेश करते हैं, देखो! इसके बिना भेद कहाँ से होगा कि यह अन्यमति का यह कथन है, जैन का यह कथन है, दूसरे की यह मान्यता है, सत्य यह है, असत्य यह है, ऐसा जब तक ज्ञान यथार्थ न हो, तब तक

विवेक नहीं हो सकता।

देखो, **'करनानुयोग संपूर्नं'** ऐसा पाठ है। उसमें शाश्वत् के बाद आयेगा। वाँचना चाहिए। **'स्वात्म चिंता सदा बुधै'** इस द्वारा पण्डितों को अपने आत्मा की चिन्ता... वापस उसमें से निकालना है आत्मा। करणानुयोग में से वाँचन करके उसमें से निकालना है आत्मा। **'स्व स्वरूपं च आराध्यं'** फिर अपने स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। यह करणानुयोग सदा ही वस्तु का स्वरूप बतलानेवाला है। देखो! उसमें भी शाश्वत् आया। **'करनानुयोग सारस्वतं'** भगवान के मुख से अनन्त काल से तीर्थंकर के मुख से प्रथमानुयोग चला आता है। चरणानुयोग भी अनादि वीतरागदेव के मुख से चला आया है। शाश्वत् पद पड़ा है उसमें, हों! समझ में आया?

फिर उसमें देखो,

**सुद्धात्मा चेतनं जेन, उवं हियं श्रियं पदं।**
**पंच दीप्ति मयं सुद्धं, सुद्धात्मा सुद्धं गुनं॥३५१॥**

यह इसमें से योग की सहायता से शुद्ध आत्मा का अनुभव हो और ओम ह्रीं मन्त्र लिया है। पंच परमेष्ठी स्वरूप का शुद्धात्मा के गुण को जाने। वही **करणानुयोग का मूल अभिप्राय है।** उसमें से भी शुद्धात्मा निकाले करणानुयोग के विचार में, उसका नाम करणानुयोग का अभ्यास कहा जाता है।

**सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं, कुन्यानं त्रि विमुक्तयं।**
**ऊर्ध च ऊर्ध सद्भावं, उवंकारं च विंदते॥३५२॥**

**'सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं, कुन्यानं त्रि विमुक्तयं'** क्यों उसमें शल्य कहा? कि जैसे करणानुयोग वीतराग के मार्ग में है, ऐसी बात दूसरे में है ही नहीं। तो **'सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं'** ऐसा कहा है। अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा, एक-एक परमाणु में अनन्त गुण, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय स्वयंसिद्ध, ऐसा करणानुयोग में कथन चलता है। अभ्यास की खबर नहीं और बिना भान के माने कि भाई! हमको भगवान सच्चे, गुरु सच्चे। परन्तु गुरु सच्चे समझे बिना तुझे सच्चे कहाँ से आये? समझ में आया? मिथ्यारूप तीन शल्य को त्यागना चाहिए और तीन प्रकार... यह करणानुयोग में आया है, हों!

कुज्ञान को त्यागना चाहिए। अज्ञानी का जो ज्ञान करणानुयोग के नाम से लेता है कि ऐसा है और वैसा है, वह सच्चा नहीं है। और '**ऊर्ध**' भगवान को और ऊँचे स्वभाव को भले प्रकार से जानना चाहिए। लो! अभी उसमें एक करणानुयोग निकाला भाई उसमें। है उसमें?

'**दिव्य दृष्टि च संपूर्नं, सुद्धं संमिक दर्सनं।**' करणानुयोग में से द्रव्यदृष्टि निकाली। '**दिव्य दृष्टि च संपूर्नं,**' देखो, उसमें भी सम्पूर्ण शब्द पड़ा है। '**सुद्धं संमिक दर्सनं।**' '**न्यान मंय सार्धं सुद्धं, करनानुयोग स्वात्म चिंतनं।**' द्रव्यदृष्टि। यह द्रव्यार्थिकनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाला है। देखो, करणानुयोग में सबका—पर्याय का कथन है, परिणाम का सूक्ष्म कथन है। तो उसमें से वाँचकर, समझकर अपनी द्रव्यदृष्टि से, द्रव्यार्थिकनय से एक स्वरूप अपना है, वह करणानुयोग में से निकालना चाहिए। समझ में आया?

**द्रव्य को देखने के लिये इसी के द्वारा... 'सुद्धं संमिक दर्सनं' शुद्ध सम्यग्दर्शन का लाभ होता है।** पर्याय का ज्ञान करना, करणानुयोग का ज्ञान करना, परन्तु अपना द्रव्य शुद्ध अभेद त्रिकाल है, उसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन का लाभ है। ऐसा करणानुयोग में से निकालना। समझ में आया? यह श्रावक को कहते हैं श्रावक को। हम तो भाई श्रावक गृहस्थाश्रम में हैं। हमारे क्या करना? धर्म करना है या नहीं तुझे? तो भगवान कहते हैं कि चार अनुयोग का ज्ञान न हो और एक द्रव्यानुयोग की रुचि रखे और करणानुयोग या चरणानुयोग या प्रथमानुयोग की अरुचि रखे तो चारों ही अनुयोग तो भगवान ने कहे हैं। जिनवाणी की उसे शंका है कि यह जिनवाणी है या नहीं? समझ में आया? चारों ही अनुयोग भगवान से चले आये हैं। अनादि से शाश्वत् चले आये हैं। भाषा बदल जाये, नाम बदले। '**न्यान मंय सार्धं सुद्धं**' ज्ञान में यथार्थ शुद्धात्मा का अनुभव होता है, वही करणानुयोग की चिन्तवना का फल है।

अब—

**चरनानुयोग चारित्रं, चिद्रूपं रूप द्रिस्यते।**
**ऊर्धं आर्धं च मध्यं च, संपूरनं न्यान मयं धुवं॥३५४॥**

सबमें सम्पूर्ण शब्द डाला है। श्रावक और मुनि की व्यवहार क्रिया चारित्र का

अधिकार जिसमें है। पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, बारह व्रत, षट्कारक, छह अनायतन का त्याग, षट्कर्म श्रावक के, जिसमें वर्णन करते हैं, उसके द्वारा चैतन्यस्वभाव आत्मा का अनुभव होता है। ऐसा ज्ञान यथार्थ हो तो अपना आत्मा उससे पर्याय से भिन्न अपना पूर्ण द्रव्य है, उसका अनुभव होता है। उसके ऊपर, नीचे, मध्य में सर्व ओर ज्ञानमय निश्चल आत्मा का दर्शन होता है। आत्मा सम्पूर्ण रीति से परिपूर्ण ज्ञानमय है, ऐसा ज्ञान होता है। उसमें आया है। यह जरा नीचे है।

अब द्रव्यानुयोग देखो। चरणानुयोग आ गया। चरणानुयोग का अभ्यास करना। चरणानुयोग में व्यवहार क्रिया की बात बहुत है। चरणानुयोग में व्यवहार क्रिया की बात आती है। आती है, है न। श्रावक को भी है और मुनि को भी है। राग आवे, शुभ आता है। न आवे तो क्या वीतराग हो गया? उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है। उसकी भूमिका प्रमाण चरणानुयोग का व्यापार उसे होता है, राग होता है। कर्तृत्वबुद्धि नहीं रखना। और उसे धर्म का साधन, वह राग करते-करते होगा, ऐसी मान्यता नहीं होनी चाहिए।

**मुमुक्षु :** सबमें से मक्खन निकालना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मक्खन निकाल लेना चाहिए और उसका ज्ञान तो बराबर करना चाहिए।

**दिव्यानुयोग उत्पादंते, दिव्य दिस्टी च संजुतं।**
**अनंतानंत दिस्टंते, स्वात्मानं विक्त रूपयं॥३५६॥**

ओहोहो! देखो, द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। द्रव्यानुयोग शब्द से? छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय, सबको द्रव्यानुयोग कहते हैं। उसका इसे ज्ञान करना चाहिए। स्वलक्ष्य होने के लिये, दूसरे प्रयोजन के लिये नहीं। मान के लिये कि हमको आयेगा तो व्याख्यान करेंगे तो लोग पण्डित कहेंगे। यह तो मान दृष्टि है। अपने स्वलक्ष्य के लिये, अपना ज्ञान प्रयोजन सिद्ध करने के लिये द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। '**दिव्य दिस्टी च संजुतं**' साथ में द्रव्यार्थिकनय से शुद्धात्मा की दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। अकेला अभ्यास नहीं। अभ्यास के साथ '**दिव्य दिस्टी च संजुतं**' द्रव्यदृष्टि क्या? कहो, सेठ! द्रव्यदृष्टि अर्थात् क्या? द्रव्य अर्थात् वस्तु। एक

समय में ध्रुव त्रिकाल वस्तु की दृष्टि प्राप्त करना। द्रव्यानुयोग में यह निकाला, देखो! **'दिव्यानुयोग उत्पादंते, दिव्य दिस्टी च संजुतं।'** द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना, परन्तु उसमें से क्या निकालना? द्रव्यार्थिकनय शुद्धात्मा त्रिकाल ज्ञानमूर्ति ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसा दृष्टि प्राप्त करना चाहिए। समझ में आया? यह यहाँ श्रावक को कहा है। अब वह कहते हैं कि यह तो मुनि हो तब होता है। अभी कहते हैं न कि द्रव्यानुयोग का सार तो मुनि को लागू पड़ता है। यह कहते हैं न कि समयसार अभी नहीं वाँचना। समयसार नहीं। वह तो मुनि का अधिकार है। छूना नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा सुना है न! कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि प्रथम मिथ्यादृष्टि अगृहीत है, उसे भी हम सुनाते हैं।

और यहाँ क्या कहा? तारणस्वामी क्या कहते हैं, देखो! कि श्रावक को... अभी श्रावक भावलिंग न हुआ हो परन्तु उसका प्रयत्न करना चाहता है श्रावकपने का, तो उसे भी **'दिव्य दिस्टी च संजुतं'** द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। मुनि होने के पश्चात् अभ्यास करना, ऐसी बहुत गड़बड़ करते हैं। समझ में आया? यह कहे कि नहीं। पहले समयसार नहीं चाहिए। पहले बन्ध चाहिए। महाबन्ध चाहिए। बताया था रात्रि में एक दिन। अरे भगवान! अभ्यास चारों अनुयोगों का होता है, परन्तु उसमें अध्यात्म के अभ्यास के लिये द्रव्यानुयोग मुख्य है। मुख्य है तो उसमें से द्रव्यदृष्टि निकालनी चाहिए। समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो, जिसे **'अनंतानंत दिस्टंते,' अनन्तानन्त व्यक्तरूप शुद्धात्मा के समान जगत की अनन्त, आत्मा प्रगटरूप से दिखाई पड़े।** जिसे द्रव्यदृष्टि हो तो ऐसे सर्व आत्मा, अनन्ता अनन्त आत्मा ऐसे हैं और अनन्त आत्मा सिद्धपद को प्रगट कर चुके हैं। और अनन्तानन्त आत्मा सिद्ध समान हैं, ऐसा पदार्थ का द्रव्यानुयोग अभ्यास करने से, द्रव्यदृष्टि करने से भान होता है। समझ में आया? अनन्तानन्त पदार्थ आत्मा है, एक नहीं। ऐसा न माने। तो कहते हैं न आगे? निगोद में जायेगा। जो भगवान ने कहा, ऐसी दृष्टि में शंका करता है। शंका का आया था न कहीं? आया था कहीं, नहीं? उपदेशसार? ८८, लो। भाई! यह चलते विषय में। ८८ पृष्ठ है ८८। देखो, ११८ गाथा, ८८ पृष्ठ।

**राग सहाव न गलियं, नहु गलियं मिच्छ विषय सल्यं च।**
**जिन उत्त ससंक निसंकं, अगुरु अजिन सरनि संसारे॥११८॥**

११८ गाथा है। समझ में आया? '**राग सहाव**' जिसे संसार की—राग की रुचि का स्वभाव गला नहीं—नाश नहीं हुआ। और '**न गलियं, नहु गलियं मिच्छ विषय सल्यं च**' जिसका मिथ्यात्व शल्य गया नहीं। मिथ्या अभिप्राय सर्वज्ञ से विरुद्ध अभिप्राय नाश नहीं हुआ। न कोई शल्य ... है। '**जिन उत्त ससंक**' ऐसे जिनेन्द्र कथित उपदेश में शंका रखता है। जिनेन्द्र सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा, उसमें शंका होगी? ऐसा होगा या नहीं? होगा या नहीं? होगा क्या? है ही त्रिकाल में। अनन्त आत्मा है, अनन्तगुणे परमाणु हैं, एक-एक परमाणु में अनन्तगुणे गुण हैं। अनादि-अनन्त है। ऐसा सुनकर जो शंका करता है तो उसका मिथ्यात्व नाश नहीं हुआ। मिथ्यात्व गया नहीं, संसार की रुचि छूटी नहीं। जिनेन्द्र कथित '**जिन उत्त ससंक**' **शंका रखना श्रद्धान नहीं लाता है।** उसे सच्ची श्रद्धा होती नहीं।

'**निसंकं, अगुरु अजिन सरनि संसारे।**' परन्तु निःशंक होकर, कुगुरु की शरण लेकर। ऐसे अनन्त आत्मा अनन्त परमाणु, अनन्त पदार्थ, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय आदि जो कहा, उसकी श्रद्धा न करने से, उससे विरुद्ध कहनेवाले... देखो, उन्होंने कहा। एक ही आत्मा माननेवाला, सर्वव्यापक आत्मा है, उसमें हमारा भी साधन है। ऐसा माननेवाला ऐसा निःशंक होकर कुगुरु का शरण लेता है। वह भी अच्छा... यह भी अच्छा... अच्छा है। ओहोहो! त्यागी कितना है! जंगल में रहता है, कन्दमूल खाता है, मात्र जंगल का पानी पीता है। समझ में आया? गाँव में भी आता नहीं, स्त्री का तो मुख भी नहीं देखता। बहुत त्यागी है। ऐसे अज्ञानी धर्म के त्यागी की शरण लेता है। समझ में आया? देखो लिखा है। '**निसंकं, अगुरु अजिन सरनि संसारे।**' अगुरु अर्थात् निःशंक होकर कुगुरु की शरण लेकर संसार के मार्ग में भटकता है। संसारे शरण। चौरासी लाख निगोदादि में भटकता है। समझ में आया? इसके पश्चात् ११७ में भी है। इसी और इसी में।

**जिन उत्तं नहु दिट्ठं, जन उत्तं जन रंजनस्य सभावं।**
**न्याय विन्यायन रुचियं, अन्यानं अन्मोय न्याय विरयंमि॥११७॥**

अहो! भगवान ने जो अनन्त गुण, अनन्त पदार्थ सब कहे, वे जिसे रुचते नहीं। **ऊपर कहे गये अनेक प्रकार रागी जीव जिनेन्द्र भगवान के कहे गये तत्त्व पर दृष्टि नहीं देते हैं।** है? **'जन उत्तं जन रंजनस्य' लोगों के कहने पर लगे हुए जिनसे जनता रंजायमान हो।** अज्ञानी लोगों ने जो मार्ग चलाया, उसमें चलता है। **'जन उत्त'** लोगों ने अज्ञानियों ने वह मार्ग चलाया, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र (को मान्य करके) और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का लोप करके। **लोगों के कहने पर लगे हुए...** लोग कहे, चलो भाई! यह बड़े हैं। राजा मानते हैं। ... मानते हैं। बहुत लोग मानते हैं। तो कुछ होगा न? पीछे लग जाते हैं भेड़ की भाँति। घेंटा को क्या कहते हैं? भेड़, भेड़, भेड़ (भेड़चाल)।

**'जन उत्तं'** देखो, शब्द है। वीतराग उत्तम नहीं, जिन उत्तम नहीं। **'जन उत्तं'** यह शब्द पड़ा है। क्या कहते हैं? जिन उत्तं नहीं, **'जन उत्तं'**। जिनेन्द्रदेव भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अनन्त द्रव्य, अनन्त परमाणु आदि अनन्त गुण, अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध अकृत्रिम बताये हैं, उसकी श्रद्धा नहीं करके **'जन उत्तं'** सामने शब्द पड़ा है। **'जिन उत्तं नहु दिट्ठं, जन उत्तं जन रंजनस्य'** और लोगों का कहा हुआ, अज्ञानी का कहा हुआ, उसमें जो लगे हुए हैं। **जिनसे जनता रंजायमान हो। ऐसे भव में लगे रहते हैं, उसको आत्मज्ञान व भेदज्ञान नहीं रुचता।** उसको आत्मज्ञान पर से भिन्न, पर अनन्त है, मैं परिपूर्ण हूँ, ऐसा पर से भिन्न भेदज्ञान उसे नहीं रुचता। **वे अज्ञान की अनुमोदना करते हैं।** देखो, **'अन्यानं अन्मोय'** यहाँ अनुमोदना लिया, भाई! अनुमोदन। अज्ञान की प्रशंसा करता है। बस, लो, अज्ञानी की प्रशंसा करता है अज्ञान की जहाँ-तहाँ। वह बहुत त्यागी हैं, वैरागी हैं, इतना ज्ञान, अकेले जंगल में रहते हैं, अकेले हैं, वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं रखते, भोजन भी कभी बाहर से आवे तो ले लेते हैं, नहीं तो १५-१५ दिन भूख सहन करते हैं। वह कहीं श्रद्धा बिना करते हैं? अब सुन न! मिथ्यादृष्टि ने ऐसा अनन्त बार किया है। समझ में आया? तो कहते हैं कि ऐसे अज्ञानी की बात उसे रुचती है, परन्तु ज्ञान से विरक्त रहता है। सच्चे ज्ञान से तो विरक्त रहता है। बराबर है?

११९ में है।

**जिन उत्त भाव नहु लष्यं, जिन उत्तं भाव अन्मोयं संजुत्तं।**
**जनरंजन राग सहावं, रागं अन्मोय सरनि भावना हुंति॥११९॥**

भाषा देखो न, भाषा कैसी की है! है? देरियाजी! अहो! **जिनेन्द्र भगवान कथित पदार्थों पर... 'जिन उत्त भाव'** भाव शब्द पड़ा है न? भाव अर्थात् पदार्थ। भगवान वीतराग जिनेन्द्रदेव ने कहे हुए अनन्त पदार्थ, अनन्त गुण, अनन्त जीव, त्रिकाल शाश्वत् वस्तु, ऐसे अनन्त पदार्थों का भाव भासित होने पर मिथ्यादृष्टि लक्ष्य नहीं देता। उस भाव का ज्ञान क्या है, उसके ऊपर लक्ष्य नहीं देता। लक्ष्य नहीं देता, विचार नहीं करता, मंथन नहीं करता। **'जिन उत्तं भाव अन्मोय'** परन्तु अल्पज्ञानी लोगों के कहे हुए, अज्ञानी के कहे हुए। देखो, **'जिन उत्तं भाव'** वापस भाव पड़ा है। दोनों में भाव पड़ा है। भाव शब्द से पदार्थ। पदार्थ को भाव कहते हैं, गुण को भाव कहते हैं, पर्याय को भाव कहते हैं। यहाँ भाव पदार्थ को कहते हैं। समझ में आया? भावाय आता है, नहीं? **'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते चित्स्वभावाय भावाय'** वहाँ भाव द्रव्य को कहते हैं भाव। वह यहाँ भाव द्रव्य है, पदार्थ है। भाव। जगत के अनन्त पदार्थ। उसे **अल्पज्ञानी लोगों के कहे हुए पदार्थ और भावों की अनुमोदना करते हैं।** शोभालालजी! यह ज्ञान हुए बिना क्या होगा? गड़बड़ हुए बिना रहती नहीं।

**'जनरंजन राग सहावं' उसका ऐसा राग स्वभाव बन जाता है कि लोगों के प्रसन्न करना चाहते हैं।** बस। ... बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े मनुष्य, राजा... देरियाजी! बात तो बहुत कठिन है, हों! तारणस्वामी तो बराबर फटकार मारते हैं देखो खुल्ला। ऐसा राग स्वभाव बन गया। ऐसा कहते हैं न? **'जनरंजन राग सहावं'** लोगों को अनुकूल पड़े, ऐसी बात वीतरागदेव त्रिलोकनाथ की बात कठिन पड़ती है, ऐसा। मृदुस्वभाव आया न? समन्तभद्राचार्य ने कहा न! समन्तभद्राचार्य ने स्तुति में बताया था। २४वें भगवान। हे नाथ! अन्यमति की वाणी मृदु लगती है। कोमल लगती है, मीठी लगती है। भगवान की भक्ति करो जाओ कल्याण होगा। नाम स्मरण करो, नाम स्मरण करो। नाम से तिर जायेगा। मीठी लगे, भाई! है जहर। समझ में आया? समन्तभद्राचार्य कहते हैं, प्रभु! आपका कथन है तो महा अलौकिक, परन्तु मृदु नहीं लगता, कठिन लगता है और अन्यमति की वाणी कोमल-कोमल लगती है। यह एक साधु को भोजन करा दो।

भोजन करा दो, तुम्हारा मोक्ष हो जायेगा। अभी कहते हैं न कि हमको दो, तुमको निर्जरा होगी। धूल में भी निर्जरा नहीं, सुन तो सही। सच्चे साधु भाव दिगम्बर मुनि हों, उन्हें भी आहार देने के भाव को भगवान पुण्य कहते हैं। संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! अब यह तो अभी कुगुरु दृष्टि में विपरीतता, श्रद्धा में विपरीतता। हमको एक बार आहार बना दो। जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। तेरा तो ठिकाना नहीं, दूसरे का कल्याण कैसे हो जाएगा? समझ में आया?

**मुमुक्षु :** इसलिए सरल लगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सरल लगता है, इसलिए सेठिया घुस जाते हैं उसमें। समय मिलता नहीं तम्बाकू के कारण। जिसे जो व्यापार हो। इन्हें तम्बाकू का है। जिसे जो व्यापार हो, उसमें घुस जाते हैं। निवृत्ति नहीं मिलती।

**मुमुक्षु :** मुख्य तो हमको ही पीटने का है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुख्य तुमको ही पीटने का है बराबर। तुम मुख्य हो या नहीं? यह मुखिया है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

**अल्पज्ञानी कहे हुए पदार्थ की भावों की अनुमोदना कर सके।** अनुमोदना करे। और जनरंजन करना, ऐसा स्वभाव हो गया। और निरन्तर भावना ऐसी होती है कि **रागभाव की अनुमोदना के मार्ग में लगा रहता है।** राग और विकल्प में लगा रहे, ऐसी बात की ही प्रशंसा करता है। परन्तु वीतराग भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, उसकी गन्ध भी नहीं आती। कहो, समझ में आया? इत्यादि... इत्यादि... बहुत बात है। लो, समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - १४-०९-१९६३**
**गाथा-४९४ से ४९७, प्रवचन-३**

भगवान का सत्य उपदेश, सच्चा सार किसे कहते हैं, यह बात तारणस्वामी इसमें कहते हैं। मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। तो उपदेश में मोक्षमार्ग सत्य—शुद्ध कैसा होना चाहिए, यह बात चलती है। ४९५।

**सिद्धं च सव्व सिद्धं, सिद्धं अंगं च दिगंतरं दिट्ठं।**
**सिद्धं अर्थ तिअर्थं, समर्थ्यं समय दिस्टि अन्मोयं॥४९५॥**

**'सिद्धं' सिद्ध परमेष्ठी है जिन्होंने सर्वसिद्धि प्राप्त कर ली है।** सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में पूर्ण प्राप्ति कर ली हैं। ऐसा जो भाव अन्दर पड़ा है। गुप्त-गुप्त। वह गुप्त शक्ति पड़ी है सिद्ध समान। उसका आश्रय करने से सिद्धपद तुझे पूर्ण प्राप्ति होगी। ऐसा उपदेश करना, उसका नाम उपदेशशुद्धसार कहा जाता है। समझ में आया? गुप्त है न कहीं। गुप्त का है सही कहीं। ममलपाहुड़ में होगा? सूर्य समान गुप्त आत्मा, ऐसा कुछ है। ममलपाहुड़ है। पृष्ठ २९०। ममलपाहुड़, भाई तीन है। देखो, उसमें होगा। २८० पृष्ठ पर देखो उसमें होगा। ममलपाहुड़ तो बहुत है। उसकी दूसरी गाथा। ... अर्क अर्थात् सूर्य। **सूर्य समान गुप्त आत्मा से मेल करके।** देखो, है? भाई को बताओ। देरियाजी को मूल बताओ। कहाँ है? बड़े भाई नहीं आये? दूसरी गाथा है न? उसमें दूसरी गाथा का अर्थ है। देखो! .... यह दूसरी गाथा है, उसका अर्थ है। ... सूर्य समान भगवान आत्मा अन्तर गुप्त है। सिद्धपर्याय पूर्ण प्रगट है और अपने आत्मद्रव्य में गुप्तरूप से सिद्ध स्थित है। देरियाजी! शक्ति में, ध्रुव में। पर्याय में राग-द्वेष पुण्य-पाप होने पर भी, स्वरूप-स्वभाव सत्त्व ध्रुव में शक्तिरूप **सूर्य समान गुप्त आत्मा से मेल करके जिनपद का प्रकाश हुआ है।** वीतराग। यह सिद्ध शब्द कहा न अभी? सिद्ध को सर्व सिद्ध पर्याय प्राप्त हुई। कैसे? कि अपना शुद्ध आत्मा अन्दर गुप्त है, ध्रुवरूप है, उसके साथ मेल करके। 'मिलयं' है न शब्द? मेल करके जिनपद का प्रकाश हुआ है। सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग की पर्याय उससे प्रगट हुई है। राग से या पुण्य से या संयोग से या निमित्त को प्राप्त करके, वह सिद्धपद की पर्याय प्रगट नहीं होती। समझ में आया?